उर्वरक की मात्रा :- इस फसल के लिये 20 किलो नत्रजन, 40 किलो स्फूर, 20 किलो पोटाश एवं 20 किलो गंधक प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के पहले कूड़ों में दें। इसके पश्चात शाख निकलते समय तथा फलियॉ बनते समय 2 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव अधिकतम उत्पादन के लिये किया जाना चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन :- विसिया सटाइवा (जिल्ली) तिवड़ा का एक प्रमुख खरपतवार है जो बहुत तेजी से बढ़ता है और पुरे फसल को ढक लेता है। इसकी रोकथाम या निंदाई इसकी फूल अवस्था के पहले करें तो ज्यादा उपयुक्त है। सामान्य बुवाई वाली फसलों के लिए बुवाई के 30-35 दिन बाद (मिट्टी की स्थिति कि ऊपर) एक निराई हाथ से करें। 750-1000 लीटर पानी में फ्लुक्लोरेलिन (बेसालिन) 45 ईसी/0.75-1 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर के एक स्प्रे द्वारा खरपतवारों को भी प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है।

पौध संरक्षण उपाय :-

कीट प्रबंधन - तिवड़ा को तेला (थ्रिप्स) से ज्यादा नुकसान होता है। इसके नियंत्रण के लिसे डायमेथोएट 30 ई.सी. या मिथाइल डेमेटान 20 ई.सी. का 1 लीटर/हे. के हिसाब से छिड़काव करें।

रोग प्रबंधन :-

1. भभूतिया या चूर्णिल आसिता (पावडरी मिल्डयू)

लक्षण : पत्तियों पर सफेद रंग के छोटे-छोटे धब्बे पाये जाते हैं। यह धब्बे बाद में संपूर्ण पत्ती को सफेद चूर्ण से ढक लेते हैं। अत्यधिक प्रकोप होने पर पूरा पौधा सफेद दिखता है तथा कुछ समय बाद सूख जाता है। यह रोग इरीसाइफी पोलीगोनी फफूँद द्वारा होता है।

प्रबंधन : घुलनशील गंधक (सल्फेक्स) 3 ग्राम प्रति लीटर पानी या कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन) 1 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिड़काव रोग की तीव्रता के अनुसार 2-3 बार 10-15 दिन के अन्तराल पर करना चाहिये।

2. मृदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्डयू)

लक्षण : रोगग्रस्त पत्तियों की ऊपरी सतह पर भूरा धब्बा दिखाई देता है, जिसका मध्य भाग कुछ हल्के रंग का होता है। उन्हीं धब्बों के ठीक नीचे मटमैले रंग की फफूँद की रचनाएँ दिखाई देती हैं। रोग की गंभीर अवस्था में पत्तियाँ तथा तना भूरा हो जाता है तथा अन्त में सूख जाता है। यह रोग पेरेनोस्पोरा लेथायरी पेलेस्ट्रीस फफूँद द्वारा होता है।

प्रबंधन : ताम्रयुक्त फफूँदनाशक दवा (ब्लाइटॉक्स 50 या फाइटोलान) या मेन्काजेब (डायथेन एम-45) 3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी का छिड़काव 10-15 दिन के अन्तर पर दो-तीन बार करने से रोग का प्रभावकारी नियंत्रण होता है। रोग अवरोधी किस्म प्रतीक लगायें।

3. रस्ट

इसमें पत्तियों और तनों पर गुलाबी से भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। इसके रोकथाम के लिए जल्दी परिपक्व होने वाली किस्म उगाएं, कार्बेन्डाजिम-2 ग्राम/ किग्रा बीज के साथ बीजोपचार करें एवं खड़ी फसल में मेन्कोजेब 75 डब्यूपी/2 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

कटाई, मिंजाई और भंडारण :- फसल हल्की पीली पड़ने पर कटाई करें, अधिक पक जाने पर फल्लियाँ चटकने लगती है। फसल की गहाई कर दानों को अच्छी तरह से सूखाकर भण्डारण करने से घुन नहीं लगती है।

उपज :- उतेरा विधि में 4-5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर एवं बतर बुवाई में 10-15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की उपज प्राप्त हो जाती है।

प्रस्तुतकर्ता :

पी. मूवेन्थन, अनिल दीक्षित, एम.ए. खान, जी.एल. शर्मा, प्रवीण वर्मा, लोकेश वर्मा, उत्तम सिंह, भीषम कुमार एवं सतीश खाखा।

प्रकाशक :

डॉ. पी. के. घोष
निदेशक एवं कुलपति
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय जैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान
बरोंडा, रायपुर, छत्तीसगढ़– 493225
फोन – 0771–2225333
वेबसाईट – https://nibsm.icar.gov.in/

Publication No. - NIBSM/EF/2021-44

Farmer FIRST

Farmer FIRST Programme
फार्मर फर्स्ट प्रोग्राम

(Agricultural Extension Division)
(कृषि प्रसार विभाग)
Indian Council of Agricultural Research
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

तिवड़ा (लाखड़ी) उत्पादन तकनीक

ICAR - National Institute of Biotic Stress Management
भाकृअनुप – राष्ट्रीय जैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान
Baronda, Raipur, Chhattisgarh - 493225, Ph. 0771-2225333
बरोंडा, रायपुर, छत्तीसगढ़ - 493225, फो. 0771-2225333
Website : https://nibsm.icar.gov.in/

परिचय :- तिवड़ा एक प्रमुख दलहनी फसल है, धान आधारित कृषि में इसकी अहम् भूमिका है, सीमित पानी एवं अन्य संसाधन होने पर भी तिवड़ा को उतेरा विधि द्वारा अच्छे से लगाया जा सकता है जहां पर अन्य दलहन फसल नहीं हो पाता वहां पर तिवड़ा अच्छे से हो जाता है इसके दाल के साथ-साथ कोमल पत्तियों को सब्जी के रूप में बहुत पसंद किया जाता है, तथा इसको सूखा कर भी रखा जाता है। तिवड़ा (लाखड़ी) छत्तीसगढ़ की प्रमुख दलहनी फसल है। क्षेत्रफल के आधार पर धान के बाद सबसे अधिक रकबा इस फसल के अन्तर्गत आता है। धान आधारित कृषि में इस फसल की अहम् भूमिका है। प्रदेश में सिंचाई के सीमित संसाधन होने के कारण द्विफसलीय कृषि पध्दति का अनुपम तरीका छत्तीसगढ़ के किसान, उतेरा के रूप में दीर्घकाल से अपनाते चले आ रहे है। वैसे तो उतेरा के रूप में दलहन और तिलहन की अनेक फसलें ली जाती है, किन्तु तिवड़ा उनमें सफलतम होने के कारण आज भी इसकी खेती की जाती है। उतेरा में बीज के अलावा अन्य सस्य क्रिया न अपनाने के कारण इसकी औसत पैदावार बहुत कम है।

लाखड़ी में 25-28 प्रतिशत तक प्रोटीन मे साथ-साथ अन्य उपयोगी पोषक तत्व पाये जाते हैं, किन्तु इस के दानों में बीटा एन. ऑक्सीलाइट एल. 3,2 डाई-अमीनो प्रोपियोनिक अम्ल (ओ.डी.ए.पी.) अपोषक तत्व एक अभिशाप के रूप में पाया जाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार तिवड़ा की अधिक मात्रा का सतत् सेवन करने पर पैरों की स्नायु तंत्र पर विपरीत असर डालता है, और एक प्रकार का लँगड़ापन, जिसे लेथारिज्म कहते हैं, होने का अंदेशा रहता है। खाद्यान्न की सुखद स्थिति होने के कारण वर्तमान में कोई भी व्यक्ति अत्यधिक मात्रा में तिवड़ा का सेवन नहीं करता है। इसके साथ ही नवीत किस्मों का विकास किया जा चुका है, जिसमें उक्त अपोषक (हानिकारक) तत्व की मात्रा नगण्य रह गई है, जिसे निरंक करने के प्रयास किये जा रहे हैं। उन्नत तकनीकी अपना कर एवं नवीन किस्मों को लगा कर इसकी पैदावार बढ़ाई जा सकती है।

तिवड़ा का प्रमुख उपयोग :- इसके कोमल पत्तो को सब्जी के रूप में, तथा हरे फल्लियों को भी खाया जाता है, इसको दाने को सूखा कर उससे दाल, बेसन तथा पशुओं के लिए दाना बनाया जाता है।

तिवड़ा दाल का उपयोग :- तिवड़ा का उपयोग आमतौर पर दाल एवं बेसन के रूप में किया जाता है। तिवड़ा की दाल बनाने के पूर्व ठण्डे या गर्म पानी में उपचारित कर लेने पर तिवड़ा पर विद्यमान अपोषक तत्व की मात्रा को कम किया जा सकता है। इसमें विद्यमान अपोषक तत्व पानी में घुलनशील हैं, इसलिए दाल बनाने के पूर्व तिवड़ा को सामान्य पानी में 6 घंटे भिगोकर रखने तथा उसके बाद धूप में सुखाकर दाल बनाने पर 25 प्रतिशत तक अपोषक तत्वों की मात्रा कम हो जाती है। इसी तरह तिवड़ा का गुनगुने पानी में 3 घंटे तक भिगोने व सुखाने के बाद दाल बनाने पर 40 प्रतिशत तक अपोषक तत्व की मात्रा कम हो जाती है। अनुसंधान से सत्यापित हो चुका है कि ओ.डी.ए.पी. की सबसे ज्यादा मात्रा तिवड़ा बीज के भ्रूण में पाया जाता है। दाल बनाने से भ्रूण एवं छिलका अलग हो जाने से 4.3 प्रतिशत ओ.डी.ए.पी. की मात्रा पुनः कम हो जाती है। नवीन किस्मों का प्रयोग ज्यादा करें।

तिवड़ा दाल को चना या अरहर के साथ 1:4 अनुपात में मिलाकर इस्तेमाल करना अधिक सुरक्षित है। विभिन्न विधियों का प्रयोग करके तिवड़ा में पाये जाने वाले अपोषक तत्व, जो एक प्रकार की विषाक्तता पैदा करते हैं, को आसानी से कम या दूर करके खाने योग्य बनाया जा सकता है।

भूमि :- उच्च अम्लीय मिट्टी को छोड़कर सभी प्रकार की मिट्टी में इसकी खेती की जा सकती है, यह दोमट और गहरी काली मिट्टी में बहुतायत से उगता है और उत्कृष्ट फसल पैदा करता है। उतेरा प्रणाली (रिले फसल) के तहत तिवड़ा की खेती के लिए, कोई जुताई की आवश्यकता नहीं है। तिवड़ा फसल की खेती के लिये डोरसा एवं कन्हार भूमि उत्तम है। इस फसल के अच्छे अंकुरण एवं अधिक उत्पादन के लिये खेत साफ-सुथरा तथा मिट्टी भुरभुरी होनी चाहिए। इसके लिए आले (बतर) आने पर 2-3 बार जुताई करें तथा पाटा चलाकर खेत की मिट्टी को समतल करना चाहिए।

जलवायु :- तिवड़ा की खेती शुष्क या अर्ध-शुष्क मौसम वाले क्षेत्रों मे सफलतापूर्वक किया जा सकता है। फसल आमतौर पर अक्टूबर-नवंबर में बोई जाती है और मार्च में काटा जाता है, तिवड़ा के लिए 15 डिग्री से. से 25 डिग्री से. तापमान अनुकुल होती है।

उन्नत नवीन किस्में :-

1. **रतन** - यह किस्म का विकास ऊतक संवर्धन विधि से भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 1997 में किया गया है। छत्तीसगढ़ के विभिन्न क्षेत्रों में किये गये परीक्षणों में इस किस्म की औसत उत्पादकता 1300 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर तथा उतेरा में 636 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर पाई गई। इसमें अपोषक (हानिकारक) तत्व की मात्रा 0.10 प्रतिशत से कम तथा प्रोटीन की मात्रा 27.82 प्रतिशत पाई जाती है। इस जाति के पौधे ऊँचे, पत्तियां चौड़ी व हरी, फल्लियॉ बड़ी तथा दाने बड़े आकार के आते हैं। इस किस्म की विशेषता है कि इसकी फल्लियॉ पकने मे उपरान्त भी झड़ती नहीं हैं, जबकि स्थानीय किस्मों में यह दोष पाया जाता है। इस किस्म में वृध्दि अच्छी होने से जानवरों के लिये पौष्टिक भूसा पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। पकने की अवधि 105 से 110 दिन होती है।
2. **प्रतीक** - तिवड़ा की इस किस्म का विकास एल.एस.-8246 तथा ए.-60 के वर्ण संस्करण विधि से इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर द्वारा वर्ष 1999 में किया गया है। इस किस्म में हानिकारक तत्व की मात्रा नगण्य (0.076 प्रतिशत) है। इस किस्म के पौधे गहरे हरे रंग के 50-70 से.मी. ऊँचाई के होते हैं। दाने बड़े आकार एवं मटमैले रंग के आते है। पकने की अवधि 110-115 दिन तथा औसत उपज 1275 कि.ग्रा. (बोता) एवं उतेरा में 906 कि.ग्रा. है। यह किस्म डाउनी मिल्डयू रोग के प्रति सहनशील है।
3. **महातिवड़ा** - यह किस्म गुलाबी फूलों वाली तथा कम ओ.डी.ए.पी., बड़ी दानों वाली (लाख) किस्म है। इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर से विकसित यह किस्म 2008 में जारी की गई तथा 90-100 दिनों में पकने वाली 12-14 क्वि./हे. उतेरा खेती उत्पादकता वाली किस्म है। यह भभूतिया रोग निरोधक है। इस किस्म में प्रोटीन 28.32 प्रतिशत तक पाया जाता है।

बीज की मात्रा एवं बीजोपचार :- उतेरा पद्धति में 70-80 किलोग्राम तथा बतर बुवाई में 40-45 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता पड़ती है। बीज को बुवाई के पहले 3 ग्राम थायरम या बाविस्टिन या कन्टाफ (1.5 ग्राम) फफूंदनाशक प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से बीजोपचार करें। बीजोपचार के बाद बीज को राइजोबीयम एवं पी.एस.बी. कल्चर 5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित करें। एक एकड़ के लिए आवश्यक बीज लें तथा पानी के हल्के छींटे देकर बीज को नम करें, फिर कल्चर को बीज पर छिड़क कर अच्छी तरह मिलावें। बीज छाया में सुखाएँ तथा शीघ्र ही बोयें। उपचारित बीज धूप में न सूखाएँ।

1. **रोग एवं कीटनाशी रसायनों से बीजोपचार** - बीजजनित रोगों से बचाव के लिये 2 ग्राम थायरम, 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम अथवा 3 ग्राम थायरम प्रति कि.ग्रा. बीज दर से उपचारित करना चाहिये।
2. **राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार** - एक पैकेट (200 ग्राम) राइजोबियम कल्चर 10 कि.ग्रा. बीज को उपचारित करने के लिए पर्याप्त होता है। इसके लिये 50 ग्राम गुड़ अथवा चीनी को आधा लीटर पानी में घोलकर गर्म कर लिया जाता है। घोल के ठण्डा होने पर इसमें एक पैकेट राइजोबियम कल्चर को अच्छी तरह से मिला दिया जाता है। बाल्टी अथवा मिट्टी के घड़े में 10 कि.ग्रा. बीज डालकर घोल में मिला देना चाहिये ताकि कल्चर बीज की सतह पर चिपक जाये। इस प्रकार उपचारित बीज को छाया में सुखाकर बुवाई के लिये प्रयोग करें।
3. **पी.एस.बी. कल्चर (फास्फेट साल्युबिलाइजिंग बैक्टीरिया) से बीजोपचार**- राइजोबियम कल्चर की भाँति ही फास्फेट घुलनशील बैक्टीरिया (पी.एस.बी.) कल्चर के पैकेट भी उपलब्ध रहते हैं, जिन्हें बाजार या कृषि महाविद्यालयों से खरीदा जा सकता है। पी.एस.बी. कल्चर से बीजोपचार हेतु 5 ग्राम कल्चर प्रति कि.ग्रा. बीज हेतु पर्याप्त होता है।

फसल प्रणाली :- तिवड़ा को रबी में धान के बाद एकल फसल के रूप में जुताई करके लगाया जा सकता है तथा धान के खड़ी फसल में छिड़क कर उतेरा के रूप में लगाया जा सकता है, जिसमें धान के कटाई के पश्चात यह फसल उसी नमी का उपयोग करके वृध्दि करता है।

बुवाई का समय एवं तरीका :- अक्टुबर की द्वितीय सप्ताह से नवम्बर के द्वितीय सप्ताह तक इस फसल की बुवाई कर सकते हैं। विलम्ब की अवस्था में बुवाई 30 नवम्बर तक कर सकते हैं। खेती की अच्छी तरह से तैयार करने के बाद दुफन व देशी नारी हल अथवा सीड ड्रिल से बुवाई करें। कतार से कतार की दूरी 30 से.मी. रखनी चाहिए। यथासंभव बुवाई के लिये दो चाड़ी से खाद तथा पीछे वाली चाड़ी से बीज को डालना चाहिये।

बुवाई का समय :- अक्टुबर के द्वितीय सप्ताह से नवम्बर के द्वितीय सप्ताह तक इस फसल की बुवाई कर सकते है विलम्ब की अवस्था में बुवाई 30 नवम्बर तक कर सकते है।

उतेरा बोनी :- प्रदेश में सिचाई के सीमित संसाधन होने के कारण से छत्तीसगढ़ के किसान उतेरा विधि दीर्घकाल से अपनाते चले आ रहे हैं। वैसे तो उतेरा के रूप में दलहन (तिवड़ा, मूँग, एवं उड़द) और तिलहन (अलसी, सरसों) की अनेक फसलें ली जाती हैं, किन्तु तिवड़ा उनमें कम लागत ही सफलतम फसल होने के कारण आज भी इसकी खेती बड़े क्षेत्र में की जाती है। छत्तीसगढ़ में बीज के अलावा अन्य सस्य क्रियायें एवं पौध संरक्षण उपाय न अपनाने के कारण इसकी औसत अत्यंत कम है। इस पद्धति में उपरोक्त फसलों के बीज को धान की खड़ी फसल में छिड़क दिया जाता है तथा लगभग 20-25 दिनों बाद धान की कटाई की जाती है। इस समय तक उतेरा फसल अंकुरित होकर दो से तीन पत्ती वाली अवस्था में आ जाती है। तिवड़ा की उतेरा खेती मुख्यतः डोरसा एवं कन्हार भूमियों में की जाती है। इस पद्धति में धान काटने के 20-25 दिन पहले खड़ी धान की फसल में तिवड़ा के बीज को मध्य अक्टुबर से नवम्बर के प्रारम्भ तक छिटकवाँ विधि से बुवाई करते हैं। धान फसल की कटाई तक तिवड़ा फसल अंकुरित होकर 3-4 पत्तियों की अवस्था में आ जाती हैं। तिवड़ा की उतेरा पद्धति से बोई गई फसल से अधिकतम उपज प्राप्त करने हेतू धान की शीघ्र, मध्यम अवधि की उन्नत किस्मों का चयन करना चाहिये तथा डोरसा एवं कन्हार भूमि का चुनाव करें। उन्नत किस्मों के 80790 कि.ग्रा. उपचारित बीज प्रयोग करना चाहिये। उतेरा फसल की बुवाई अक्टुबर माह तक कर लेनी चाहिये।

जल प्रबंधन :- यह फसल धान की अवषिष्ट नमी तथा वातावरण की नमी का उपयोग करके अपना जीवन पूरा कर लेती है। हालांकि, कम नमी की स्थिति में 60-70 दिनों में एक सिंचाई किया जा सकता है।